**ओ३म्**

**‘ईश्वर सबको हर क्षण देखता है और सभी कर्मों का यथोचित फल देता है’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

बहुत से अज्ञानियों के लिए यह संसार एक पहेली है। संसार की जनसंख्या लगभग 7 अरब बताई जाती है परन्तु इनमें से अधिकांश लोगों को न तो अपने स्वरुप का और न हि अपने जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य का ज्ञान है। उन्हें इस संसार को बनाने वाले व हमें व अन्य सभी प्राणियों को जन्म देने वाले ईश्वर के स्वरुप व कर्मों का भी ज्ञान नहीं है। जब अपना, ईश्वर तथा सृष्टि के सत्य स्वरुप का ज्ञान ही नहीं है, तो वह अपने जीवन को सही मार्ग पर चला भी कैसे सकते हैं? अर्थात् नहीं चला सकते। महर्षि दयानन्द अपने बाल जीवन में इनसे मिलते-जुलते अनेक प्रश्नों से परिचित हुए थे परन्तु तब उन्हें अपने पिता व आचार्यों से इन प्रश्नों का समाधान नहीं मिला था। इस कारण उन्हें स्वयं ही इन प्रश्नों के उत्तर व समाधानों की खोज करनी पड़ी जिसकी परिणति उनके समाधि सिद्ध योगी बनने व वेद ज्ञान अर्जित करने पर समाप्त हुई। यह अवस्था उन्हें सन् 1863 में तब प्राप्त हुई जब मथुरा के दण्डी गुरु स्वामी विरजानन्द जी के यहां उनका अध्ययन समाप्त हुआ था। इसके बाद स्वामी दयानन्द जी के सामने एक ही कार्य था कि वह एक गुरुकुल रूपी विद्यालय खोलकर वहां विद्यार्थियों को योग व संस्कृत व्याकरण सहित वैदिक साहित्य और वेद की शिक्षा देते। स्वामीजी ने अभी अपने भावी जीवन में किये जाने वाले कार्य की योजना तय नहीं की थी। गुरु-दक्षिणा के अवसर पर उनके गुरुजी ने उन्हें संसार में फैले अविद्यान्धकार का परिचय कराकर उसे दूर करने का अनुरोध किया। उनका कहना था कि संसार में जितने भी मत-मतान्तर प्रचलित हैं, वह सभी अज्ञान व मिथ्या-विश्वासों से पूर्ण है। इन मत-मतान्तरों के कारण ही मनुष्य ईश्वर, जीवात्मा तथा सृष्टि-प्रकृति के सत्यस्वरुप से परिचित नहीं हो पा रहे थे और अपना अमृतमय पावन दुर्लभ जीवन बर्बाद कर रहे थे। उन्होंने ऋषि को आज्ञापूर्ण निवेदन किया कि वह संसार से मत-मतान्तरों का अज्ञान, मिथ्या-विश्वासों, अवैदिक कुरीतियों व नाना सामाजिक विषमताओं व विसंगतियों को मिटाकर इसके साथ हि सत्य ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रकाश कर लोगों को ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के सच्चे स्वरुप, जो कि चेतन व जड़ के रूप में हैं, उसको विश्व में फैलायें, उसका प्रकाश व प्रचार करें।

 महर्षि दयानन्द जी ने गुरुजी की बात के एक-एक शब्द को स्वीकार किया और उन्हें वचन दिया कि वह अपने भावी जीवन में ऐसा ही करेंगे। गुरुजी दयानन्द जी के व्यक्तित्व व व्रतपालन के व्यवहार से परिचित थे। उन्हें विश्वास हो गया कि जो कार्य वह करना चाहते थे परन्तु प्रज्ञाचक्षु वा नेत्रान्ध होने के कारण नहीं कर पाये थे, वह उनका शिष्य अवश्य करेगा। इस विश्वास से उनको अत्यन्त हर्ष हुआ था। महर्षि दयानन्द जी ने अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियों को मिटाने व समाज का सुधार करने के लिए अपूर्व रीति से वेदों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। जो महत्वपूर्ण घटनायें उनके प्रचार कार्यों से जुड़ी हैं उनमें 16 नवम्बर, 1869 को हुआ काशी के लगभग 30 शीर्षस्थ पौराणिक पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ, उसके बाद 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई नगरी में आर्यसमाज की स्थापना, सन् 1874 में सत्यार्थ-प्रकाश का लेखन और प्रकाशन, उसके बाद ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका सहित वेदभाष्य एवं संस्कार-विधि, आर्याभिविनय, गोकरुणानिधि, व्यवहारभानु, आर्योद्देश्यरत्नमाला, संस्कृत की वर्णोच्चरणशिक्षा से लेकर 14 व्याकरण ग्रन्थों की रचना आदि कुछ प्रमुख कार्य भी थे। उन्होंने जीवन में अनेक शास्त्रार्थ किये, सभी मतों के विद्वानों की शंकाओं का उत्तर व समाधान किया, लाहौर, बिहार के आरा आदि अनेक स्थानों पर आर्यसमाजों की स्थापना की तथा परोपकारिणी सभा की स्थापना आदि प्रमुख कार्य किये।

 महर्षि दयानन्द ने वेदों के आधार पर **ईश्वर के जिस सत्य-स्वरुप का प्रचार किया उसके अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकत्र्ता है। यह भी सिद्ध किया कि संसार में केवल ईश्वर ही उपासनीय व हमारी स्तुति व प्रार्थानाओं के योग्य अर्थात इनका पात्र है। स्वामीजी के अनुसार ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव और स्वरुप सत्य ही हैं, वह केवल चेतनमात्र वस्तु है जो एक अद्वितीय, सर्वत्र व्यापक अर्थात संसार के भीतर व बाहर विद्यमान व उपस्थित है, सत्य गुणवाला है, जिसका स्वभाव अविनाशी है, वह ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध और अजन्मा आदि है। ईश्वर का कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को उनके पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुंचाना है। ओ३म्, ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम ईश्वर के ही हैं और इस सृष्टि को बनाकर इसका पालन व संहार करने का कार्य भी ईश्वर ही करता है। ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरुप वाली सत्ता ही ईश्वर संज्ञक व नाम वाली है।** जिसका जन्म हुआ व होता है तथा जिसकी मृत्यु हुई व होती है, वह ईश्वर कदापि नहीं हो सकता। उनके अनुसार ईश्वर का कभी अवतार भी नहीं होता क्योंकि ईश्वर निराकार-स्वरुप से ही अपने समस्त कार्यों को करने में सक्षम व समर्थ है। महर्षि दयानन्द ने जीवात्मा का स्वरुप बताते हुए कहा है कि जीवात्मा सूक्ष्म, चेतन, एकदेशी, अल्प शक्ति व सामर्थ्य वाली, अल्पज्ञ, अनादि, अनुत्पन्न, अविनाशी, अमर, जन्म-मरण को प्राप्त होने वाली, योग द्वारा उपासना कर समाधि में ईश्वर का साक्षात्कर कर तथा वेदों के ज्ञान व उसके प्रचार-प्रसार से मोक्ष को प्राप्त होने वाली सत्ता है। जीवात्मा के स्वरुप तथा विभिन्न व्यवहारों पर उन्होंने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में व्यापक रुप से प्रकाश डाला हे। इसी प्रकार से प्रकृति के जड़ स्वरुप व सृष्टि के रुप में इसकी रचना पर भी उन्होंने यथावश्यक प्रकाश डाला है।

 ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व जीवों के पाप-पुण्य रुपी फलों को देने वाला है। इसका अर्थ है कि ईश्वर हमारे प्रत्येक कर्म का साक्षी है और वह अपने कर्म-फल विज्ञान के अनुसार हमारे सभी कर्मों के सुख-दुःख भोग रूपी फल हमें प्रदान करता है। कर्म-फलों को प्रदान करने के लिए ईश्वर का सर्वव्यापक, साक्षी, व सर्वशक्तिमान होना आवश्यक है। ईश्वर हमारे सभी कर्मों का निराकार, सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी रूपी से हर क्षण का साक्षी है। इसका प्रमाण हमारा और अन्य प्राणियों का मनुष्य व अन्य प्राणी योनियों में जन्म है तथा हम सभी प्राणियों को नित्य प्रति सुख-दुख का भोग करते हुए देख रहे हैं। मृत्यु का समय आने पर जीवात्मा को शरीर से पृथक करने का कार्य भी ईश्वर द्वारा ही सम्पन्न होता है। न चाहकर भी जीव को संसार व शरीर को छोड़कर जाना पड़ता है। पूर्व जन्मों में जिन्होंने वेदानुसार अच्छे शुभ कर्म किये थे, ईश्वर द्वारा इस जन्म में वह मनुष्य बनाये गये और मनुष्यों में भी सुख विशेष की सम्पत्ति उन्हें प्रदान हुई है। कर्मों के न्यूनाधिक होने से ही हमारे परस्पर के सुख व दुःखों में अन्तर होता है। जैसे-जैसे मनुष्य विद्यादि का ग्रहण व तदनुरुप आचरण करता है उसके दुःखों में कमी व सुखों में वृद्धि होती जाती है। कुछ कर्मों के फल इस जन्म के होते हैं व कुछ भोग पूर्व जन्मों व भूतकाल के कर्मों के होते हैं। कुछ कर्मों के फलों का ज्ञान मनुष्य अपनी बुद्धि व विवेक से जान पाता है और कुछ का नहीं जान पाता क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ व अल्पशक्तिवाला है।

कर्मफल व्यवस्था पर एक प्रचलित श्लोक है-**‘अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुंभाशुभं।’** ***अर्थात् मनुष्य को अपने किये शुभ व अशुभ कर्मों के फल अवश्य ही भोगने पड़ते हैं।*** यह इस कारण है कि ईश्वर हमारे कर्मों पर अपनी दृष्टि जमाये हुए है और उनका साक्षी है। अतः हमें स्वस्थ रहने हेतु जहां व्यायाम व योगासनों को करना है, स्वास्थ्यवर्धक सुपाच्य भोजन करना है, वहीं वेदों का स्वाध्याय व प्रचार करने के साथ हमें सन्ध्या-योग-समाधि का भी अभ्यास भी करना चाहिये और वेद-निर्दिष्ट यज्ञ आदि कर्मों को करके हम पापों से बचकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का लाभ प्राप्त करें। यही ईश्वर-वेदों, ऋषियों व महर्षि दयानन्द का सन्देश है और यही विवेक से भी सिद्ध होता है। यह भी विशेष रुप से हमें सदैव ध्यान रखना है कि ईश्वर हमारे सभी कर्मों का साक्षी है, हम कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह हमें शुभ व अशुभ कर्म करने से रोकता नहीं परन्तु साक्षी होने से असत्य व बुरे कर्मों में भय, शंका व लज्जा उत्पन्न करके उसे न करने की प्रेरणा देता है और जब हम शुभ कर्म करते हैं तो वह हमें अपना समर्थन उत्साह, सुख एवं आनन्द की उत्पत्ति करके करता है। यह भी जानने योग्य है मनुष्यों की ही तरह ईश्वर के पास भी देखने, सुनने, चखने, सूंघने व वाणी आदि जैसी सभी शक्तियां व सामथ्र्य चरम रूप में है। भौतिक आंख न होने पर भी वह हमसे अधिक स्पष्ट देखता है, कान न होने पर भी सुनता है, मुख न होने पर भी उसके पास वेद-वाणी आदि है और अन्य सभी शक्तियों से युक्त वह सर्वशक्तिमान है। ईश्वर सब जीवों के सभी अच्छे व बुरे कर्मों को हर क्षण देखता है वा उनका साक्षी है, यह जानकर उसके कर्म फल विधान को समझकर आईये वेदाध्ययन, वेदाचरण, वेदप्रचार, सन्ध्या व यज्ञ आदि करने का व्रत लें। हमें लगता है कि राजनीति से जुड़े लोगों को ईश्वर के सर्वदर्शी व न्यायकारी दण्ड देने वाले स्वरुप को जानने की अधिक आवश्यकता है। उन्हें वेदाध्ययन कर ईश्वर के कर्म-फल विधान को जानना चाहिये।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**